आलवारोंकी जीवनी

—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद'

(१) आलवार या दिव्यसूरि

'आलवर' शब्दका अर्थ

'आढ़वार' या 'आलवार' शब्द दक्षिण भारतके तमिल भाषाका शब्द है। संस्कृत भाषामें इसका अर्थ है — दिव्यसूरि, दिव्ययोगी अथवा नित्ययोगी। विशिष्टाद्वैतके मतानुसार श्रीरामानुज सम्प्रदायके अत्यन्त प्राचीन सिद्ध पार्षद महात्मा आलवारके नामसे प्रसिद्ध हैं।

आलवरोंकी संख्या

किसी-किसीके मतसे आलवरोंकी संख्या दस है, तो किसी-किसीके मतानुसार बारह है। श्रीनारायणके इन पार्षदोंने वैकुण्ठसे उत्तर व दक्षिण भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें विभिन्न समयोंमें जन्म ग्रहण किया था। इनका जीवन-वृत्तान्त संस्कृत भाषामें लिखित 'दिव्यसूरि-चरितम्' और 'प्रपन्नामृतम्', तमिल और संस्कृतमिश्र मणिप्रवाल भाषामें लिखत 'प्रबन्धसार' और 'उपदेशरत्नमाला', एवं तमिल भाषामें लिखित 'पढ़नड़ई' और 'विलक्कम' नामक ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

प्रपन्नामृत ग्रन्थमें इन आलवरोंका नामनिर्देश बड़ी सुन्दरताके साथ इस पद्यमें किया गया है —

"काषारभूतमहदाह्वयभक्तिसाराः
श्रीमच्छठारिकूलशेखरविष्णुचित्ताः ।
भक्ताङ्घ्रिरेणुमुनिवाहश्चतुष्कविन्द्राः
ते दिव्यसूरय इति प्रतिथा दशोर्वां ।
गोदायतीन्त्रमिश्राभ्यां द्वादशैतान्
विदुर्बुधाः । विश्रृज्य गोदां मधुरकविना सह सत्तम ।
केचिद्द्वादश-संख्यातान् वदन्ति विबुधोत्तमाः ।

संस्कृत और तमिल भाषाओंमें आलवारोंके नाम

आलवारोंके दो प्रकारके नाम मिलते हैं। एक तो संस्कृत नाम और दूसरा तमिल नाम। ये नाम इस प्रकार हैं —

संस्कृत नाम — तमिल नाम —

(१) काषारमुनि या सरोयोगी — पोयगै आलवार,
(२) भूतयोगी — पुदत्तालवार,
(३) भ्रान्तयोग या महत्योगी — पे आलवार,
(४) भक्तिसार — तिरुमड़िसैप्पिरान आलवार,
(५) शठारि, शठकोप, परांकुश नम्मालवार, वकुला भरण —
(६) कुलशेखर — कुलशेखर आलवार,
(७) विष्णुचित्त — पेरी आलवार,
(८) भक्तपदरेणु — तोण्डरडिप्पोली आलवार,
(९) मनिवाहन, योगीवाहन या तिरुप्पाणि आलवार, प्राणनाथ —
(१०) चतुष्कवि, परकाल — तिरुमंगैयालवार,

ये सर्ववादीसम्मत दस आलवार हैं। इनके अतिरिक्त कोई-कोई

(११) गोदा अण्डाल (रंगनायकी)
(१२) रामानुज यंवारुमानार, उदैयावार या इलाही आलवार

इन बारहोंको आलवार या दिव्यसूरि कहते हैं। दूसरे कतिपय लोग गोदादेवीके बदले मधुर कविको दिव्यसूरियोंकी तालिकामें अन्तर्भुक्त करते हैं -

(१३) मधुर कवि मधुरकविगल आलवार

श्रीरङ्गनाथके मन्दिरमें और पेरेम्बेदूरमें इन आलवारोंकी मूर्तियाँ संरक्षित हैं। प्रत्येक दिन वहाँ उनकी पूजा होती है।

(□) श्रीगोदा देवी

आविर्भाव

प्राचीनकालमें दक्षिण भारतमें कावेरीके तटपर स्थित, श्रीविल्लीपुत्तूर नामक एक गाँवमें श्रीविष्णुचित्त नामके एक आलवार (विष्णुपार्षद) थे। उन्होंने वटपत्रशायी भगवान्की पूजाके लिए एक पुष्प-वाटिका और तुलसी-कानन बनाया था। वे नित्य प्रातःकाल उसे जलसे सींचते थे। एक दिन जब वे तुलसीके पौधोंको सींच रहे थे, तब वहाँ उन पौधोंके नीचे उनको एक परम मनोहर नवजात कन्या दिखलाई पड़ी। वे उसे उठाकर घर ले गये और उसे अपनी कन्या मानकर राजा जनककी तरह उसका लालन-पालन करने लगे। उन्होंने उसका नाम 'गोदा' रखा।

आविर्भाव काल और पूर्व-परिचय

९७ कलिगताब्दके नल वर्षमें वैशाख महीनेमें पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रमें गोदादेवी पृथ्वीपर आविर्भूत हुईं थीं। स्थल-माहात्म्य नामक ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि जब गरुड़जीने नारायणकी सेवा करनेके लिये विष्णुचित्तके रूपमें जन्म लिया तब लक्ष्मीजीने नारायणके निकट प्रार्थना की कि वह पृथ्वीपर विष्णुचित्तकी लड़कीके रूपमें जन्म ग्रहणकर उनकी (नारायणकी) सेवा करना चाहती है। नारायणने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और आज्ञा दी कि पृथ्वीके सभी नारायण मन्दिरोंमें लक्ष्मीजीकी इस गोदामूर्त्तिका अर्चन होगा। इनकी उपासनासे श्रीवैष्णवलोग मोक्ष प्राप्त करेंगे। नारायणकी तीन शक्तियोंमें इच्छाशक्ति प्रधानशक्ति है। इच्छाशक्ति द्वारा श्री, भू और लीला अथवा नीला नामकी तीन शक्तियाँ मूर्तिमान होकर महाविष्णुकी सेवा

करती हैं। नीला या दुर्गा शक्ति ब्रह्माण्डकी कर्त्री हैं। उन्हीं के अंशसे गोदादेवी पृथ्वीपर आविर्भूत हुई हैं।

द्वादश आलवारोंमें गोदादेवी रामानुज सम्प्रदायके वैष्णव गोदादेवीको आलवर मानते हैं। आलवरोंमें केवल गोदादेवी ही एक स्त्री आलवार हैं। कोई-कोई उन्हें आलवार नहीं मानते। उनके विचारसे आलवारोंकी संख्या १० है।

गोदादेवीकी अद्भुत बालचपलता विष्णुचित्त अहर्निश अपने पुष्पवाटिका और तुलसी-काननसे पुष्प और तुलसीपत्र चुनकर लाते और उनसे माला गूँथकर वटपत्रशायी भगवान्का श्रृंगार करते। गोदा धीरे-धीरे सयानी होने लगी। साथ ही साथ उसकी चपलता भी लगी। वह सर्वदा भगवत्कीर्त्तन किया करती। पिताके मन्दिर चले जानेपर पुष्पवाटिका और तुलसीकानन की रखवाली करती। वह भगवान्को सर्वदा अपना प्रियतम मानती थी। उनके पिता जो सुन्दर - सुन्दर मालाएँ वटपत्रशायी भगवान् के लिए बनाते, बाल-स्वभावसे गोदा अपने पिताकी अनुपस्थितिमें उन्हें स्वयं पहनकर अपनेको देखती कि सौन्दर्य भगवान्को पसंद आवेगा या नहीं। एक दिन विष्णुचित्तने गोदाको ऐसा करते हुए देख लिया। वे बड़े-बिगड़े और चिल्लाकर बोले—“बेटी। तूने यह क्या किया? तू पागल तो नही हो गयी जो भगवान् के लिए तैयार की गयी मालाको स्वयं पहनकर जूठा कर रही है? इससे बहुत बड़ा सेवा अपराध होता है। जीवोंके लिए भगवान् का निर्माल्य ही ग्रहण करनेके योग्य होता है। किसी जीवकी कोई भी उपभुक्त वस्तु मैं जान- भगवान्को निवेदन नहीं करता सकता।” उस दिन विष्णुचित्त दुःखी होकर खाली हाथ वटपत्रशायीके मन्दिरमें गये और अपना नित्य कृत्य समाप्तकर घर लौट आए। उसी दिन रातमें

उन्होंने एक स्वप्न देखा कि वटपत्रशायी भगवान् उनके सामने आकर आज पुष्प और तुलसी अर्पण न करनेका कारण पूछ रहे हैं। विष्णुचित्त द्वारा कारण बतलाने पर उन्होंने कहा —"गोदाकी पहनी हुई माला अपवित्र नहीं हुआ करती ; बल्कि उन्हीं मालाओंको धारणकर मुझे अत्यन्त सुख होता है। तुम मुझे वही माला नित्य चढ़ाया करो।" विष्णुचित्तकी आँखें खुलीं , तब बड़े विस्मित हुए और उन्हें अपनी कन्याके महत्वका पूरा निश्चय ह गया। वे उसके सौभाग्यकी सराहना करने लगे तथा उसकी माला और पुष्प तुलसी प्रतिदिन वटशायी भगवान्को निःसंकोच चित्तसे अर्पण करने लगे।

भगवत्प्रेमका विकास

आयुवृद्धिके साथ -साथ गोदाके हृदयमें भगवत् -प्रेमकी वृद्धि होने लगी। क्रमशः भगवत्प्रेमसे सिक्त उसकी हृदयगत मनोवृत्तियाँ प्रस्फुटित होने लगीं। उसकी विरह -व्यथा बढ़ती गयी। उसके प्राण निरन्तर अपने जीवनधनमें ही अटके रहते थे। नारायणके अतिरिक्त किसी भी मरणशील मानवका पाणिग्रहण करनेका विचार उसके हृदयमें लेशमात्र भी स्थान नहीं पाया। वह सदा श्रीकृष्ण और गोपियोंकी अत्यन्त आश्चर्यजनक और मनोहर लीलाओंका चिन्तन किया करती , उसकी आँखोंमें , हृदयमें प्राणोंमें , रोम -रोममें भगवान् ही छाए थे। वह सर्वदा गोपीभावसे विभावित रहती और भगवत्प्रेम प्राप्त करनेके लिए उसकी अनेक प्रकारकी विचित्र चेष्टाएँ दिखाई पड़ने लगीं। हृदयके भाव कुछ -कुछ अब बाहर भी व्यक्त होने लग गये थे।

विष्णुचित्त द्वारा विवाहका प्रस्ताव और क्षमाप्रार्थना

विष्णुचित्तने गोदाके भावोंको देखकर समझा कि वह विवाह करना चाहती है। इसलिए उन्होंने उसके सामने विवाहका प्रस्ताव रखा। गोदा किसी मरणशील मानवके साथ

विवाह करनेकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखित और क्रोधित हुई। वह निर्भय होकर स्पष्टरूपमें अपने धर्मपितासे बोली —"पिताजी ! किसी भी मर्त्य मानवके साथ विवाह दिये जाने पर मैं अपने प्राण न रखूँगी।"

श्रीरंगनाथके साथ विवाह

अब विष्णुचित्तको यह समझते देर न लगी कि गोदाका मन रूपपर ही न्यौछावर हो चुका है और वह किसी भी मनुष्यसे विवाह न करेगी। किन्तु प्रश्न तो इस बातका था कि गोदा नारायणकी किस मूर्त्तिके प्रति आकृष्ट है। उन्होंने एक उपाय सोचा। वे बड़े प्रेम और श्रद्धासे गोदाको नारायणके अष्टोत्तरशत (१०८) प्रकार की मूर्तियोंके नाम, रूप, गुण और माहात्म्य सुनाने लगे। उन्होंने कावेरी तटस्थित श्रीरंगनाथका माहात्म्य और उनकी दयालुताकी बात सुनायी। गोदा श्रीरङ्गनाथकी अर्चाकी बात परम कौतूहल और अत्यधिक उत्कंठासे सुन रही थी। सुनते-सुनते उसकी आँखें सावन-भादोकी तरह बरस पड़ीं। अब गोदाके लिए श्रीरङ्गनाथका वियोग एक क्षण भी असह्य हो गया। वह रङ्गनाथके रूप और गुणों पर आसक्त हो गयी थी। विष्णुचित्त बड़े चिन्तित हुए कि गोदाका विवाह रङ्गनाथके साथ कैसे सम्पन्न हो? चिन्ता करते-करते वे सो गये। स्वप्नमें देखा कि श्रीरङ्गनाथ स्वयं उनके पास आकर गोदाके साथ विवाह करनेके लिए प्रस्ताव कर रहे हैं।

इधर श्रीरङ्गनाथने मन्दिरके प्रधान अधिकारीको भी स्वप्नमें आदेश दिया कि वह बड़ी धूम-धामसे उनकी प्रियतमा गोदाको श्रीरङ्गक्षेत्रमें ले आवे। उसने भगवत्-आदेश समझकर छत्र, चँवर तथा राजकीय सम्मानके साथ गोदाको लानेके लिए बहुतसे सेवकोंको भेज दिया। ये लोग बिल्लीपुत्तूर पहुँचे और विष्णुचित्तको श्रीरङ्गनाथका आदेश सुनाया। विष्णुचित्त अपने स्वप्नकी बा

आज्ञा सुनकर आनन्दके मारे गद्गद हो गए। उन्होंने सारी बाते आराध्यदेव श्रीवटशायी भगवान्के चरणोंमें निवेदन किया। भगवान्ने रङ्गनाथके साथ गोदाके विवाहके लिए सम्मति दे दी फिर तो गोदाके लिए एक रत्नमय सिंहासन तैयार किया गया और उसके चारों ओर पर्दा लगाया गया। गोदादेवी अब किसी मरणशील दर्शनकी वस्तु न थी। उन्होंने अब भगवान्के अनतःपुरचारिणी होनेका अधिकार प्राप्त कर लिया था।

गोदादेवीका रङ्गनाथमें विलीन होना

इधर ढोल बजने लगे। शंख -ध्वनिसे दिशाएँ गुंजायमान होने लगीं। ब्राह्मण वेद मंत्रोंका पाठ करने लगे। इस तरह खूब धूम -धाम और राजकीय सम्मानके साथ गोदादेवी श्रीरङ्गनाथके अन्तपुरमें लायी गयीं। उस समय विष्णुचित्तके शिष्यस्थानीय मथुराके राजा वल्लभदेव श्रीरङ्गनाथके मंदिरमें विस्मित होकर खड़े -खड़े देख रहे थे। देवी प्रेममें मतवाली होकर मणिमय पालकीसे उतरकर सीधे भगवान् रङ्गनाथकी शेषशय्याके ऊपर चढ़ गयीं और सबके सामने देखते ही देखते श्रीरङ्गनाथमें विलीन हो गयीं। भौतिक आँखें उन्हें और न देख सकीं। विष्णुचित्त और अन्यान्य दर्शकगण आनन्दाश्रुसे सिक्त होकर आत्म -विभोर हो गए।

दैव -वाणी

उसी समय एक दैव -वाणी हुई —“विष्णुचित्त ! आजसे तुम मेरे ससुर हुए। हमलोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तब पंचरात्रके विधानके अनुसार विष्णुचित्तका सम्मान किया गया फिर आज्ञा हुई कि वे विल्लीपुत्तूर जाकर वटपत्रशायी सेवामें ही जीवनकी अवशेष घड़ियाँ बितावें।

गोदादेवीका स्थितिकाल और उनके रचित ग्रन्थ

आधुनिक पण्डितोंकी काल-सम्बन्धी गवेषणाका अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि गोदादेवी शकके दसवीं शताब्दीमें श्रीरङ्गक्षेत्रमें आयी थीं। उस

समय यमुनाचार्य श्रीरङ्गनाथके मन्दिरमें वर्त्तमान थे। इस विषयमें वक्तव्य यह है कि गोदादेवीकी तरह कुलशेखरकी कन्याका भी श्रीरङ्गनाथने पाणिग्रहण किया था। कुलशेखर यमुनाचार्यके समसामयिक थे। इसलिए यमुनाचार्यसे लगभग दो शताब्दी पूर्व श्रीगोदादेवीका अभ्युदय काल होना उचित है।

गोदादेवीने भक्तिरससे सने हुए उत्तम-उत्तम काव्योंकी रचनाएँ की हैं। तमिल भाषामें उनका रचित ‘तिरुपावै’ नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। किसी-किसी के मतसे उनके रचित ग्रन्थका नाम 'नाच्चियार तिरुमड़ि' है। द्राविड़ भक्तोंमें इन ग्रन्थोंका बड़ा आदर है।

(३) विष्णुचित्त (पेरिआलवार)

□□□□-□□□□ □□ □□□□□-□□□□□

आलवरोंमें श्रीविष्णुचित्तका नाम सबसे पहले आता हैं। यों तो उनका एक नाम भट्टनाथ भी है परन्तु तमिल भाषामें इनका प्रसिद्ध नाम पेरि आलवार है। ये गरुड़के अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म मद्रास प्रान्तके तिन्नेवेली जिलेमें दक्षिण मथुरा (मदुरा) के निकट विल्लीपुत्तूर नामक पवित्र स्थान में हुआ था। इनके पिता-माताका नाम मुकुंद और पद्मादेवी था। मुकुंद ‘वेयार’ नामक पवित्र ब्राह्मण वंशकी संतान थे। विष्णुचित्तका जन्म ४६ कल्याब्दके ज्येष्ठ महीनेके स्वाति नक्षत्रमें हुआ था। इसी महात्माको ५१ वर्षकी आयुमें श्रीगोदादेवीको अपनी कन्याके रूपमें लालन-पालनका अधिकार मिला था। बाल्यकालसे ही इनके हृदयेमें श्रीनारायणके प्रति स्वाभाविक भक्ति वर्त्तमान थी। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर बदलेमें एक सुन्दर जमीन खरीद ली और वहीं पर तुलसी और सुन्दर-सुन्दर फूलोंका एक अत्यन्त रमणीय बगीचा लगाया। वे प्रतिदिन सबेरे पुष्पोंको चयन करते और उनके सुन्दर हार गूँ

ग्रामके वटपत्रशायी भगवान्को अर्पण करते। फिर उन सुन्दर विभूषित भगवान्की दिव्यमूर्त्तिका दर्शनकर सुध-बुध खोकर अपलक नेत्रोंसे उनके अनुपम सौन्दर्य-माधुरीका पान करने लगते। यही इनके जीवनका दैनन्दिन कार्यक्रम बन गया था।

राजा वल्लभदेवको एक अज्ञात ब्राह्मणका उपदेश

उस समय दक्षिण मथुरा (मदुरा) प्रदेशमें पाण्ड्यवंशके वल्लभदेव नामक एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े ही प्रजावत्सल और धर्मात्मा राजा थे। एक दिन रातके समय जब वे मदुरा नगरीमें वेष बदलकर घूम रहे थे, किसी ब्राह्मणको रास्तेमें एक पेड़के नीचे सोते हुए देखा। राजाने उसे जगाकर पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?'

'महाशय! मैं एक ब्राह्मण हूँ, उत्तर देशसे गंगामें स्नानकर अब मैं अपने घरको लौट रहा हूँ। रास्तेमें आज यहीं रात हो गयी। अतः यहाँ विश्राम कर रहा हूँ।'—ब्राह्मणने उत्तर दिया।

'अच्छी बात है, आप बड़े विद्वान् जान पड़ते हैं तथा देशाटन भी किए हुए हैं। अतः आप मुझे अपने अनुभवकी किसी बातका उपदेश करें'—राजाने नम्रतासे जिज्ञासा की।

ब्राह्मणने कहा—'यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो सुनिए—

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान्निशार्थमर्द्धं दिवसं यतेत।
वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च॥

भावार्थ यह कि मनुष्य आठ महीने खूब परिश्रम करता है कि वह वर्षाके चार महीने सुखसे खा-पी सके, दिन भर इसलिए परिश्रम करता है कि रातमें सुखसे सो सके, जवानीमें यत्नके साथ इसलिए संग्रह करता है कि

बुढ़ापेके दिन सुखसे कट सकें। इन बातों से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्यको चाहिए कि वह इस जन्ममें ,
परलोकके कल्याणके लिए ही सर्वदा प्रयत्न करे।

राजाकी चिन्ता और सभाका आयोजन

इन उपदेशपूर्ण बचनोंको सुनकर राजाके हृदयमें परमार्थ तत्त्वको जाननेके लिए तीव्र उत्कंठा जग पड़ी। उन्होंने अपने मन्त्री चेल्वनम्बिको बुलाया और उससे परामर्शकर देशभरके वैदान्तिक साधुओं तथा पण्डितोंकी एक बड़ी सभाका आयोजन किया। उसमें सारे धर्मोके प्रतिनिधि बुलाये गये। शैव , शाक्त , सूर्योपासक , गाणपत्य , मायावादी , सांख्य , वैशेषिक , पाशुपत , जैन तथा बौद्ध —सभी धर्मोंके बड़े -बड़े प्रतिनिधि उस सभामें उपस्थित हुए। किन्तु राजाकी समस्या हल न हो सकी। हल होती भी तो कैसे , उनका हृदय तो किसी प्रेमीभक्तकी खोजमें था , जो उन्हें भक्ति -रसका पान कराकर उनके जीवनको सरस और भगवत् प्रेममें सराबोर करा दें।

भगवान्की आज्ञासे विष्णुचित्तका राजसभामें आगमन

विष्णुचित्त दार्शनिक पण्डित नहीं थे , भगवान्के परम भक्त थे। भगवत् -सेवा और भगवत् -गुणगान करना ही उनके जीवनका एकमात्र व्रत था। अतएव वे पण्डितोंके भी चूड़ामणि थे। वटपत्रशायी भगवान् उनसे वल्लभदेवकी राजसभामें जानेके लिए बार -बार हठ करने लगे। दिव्यसूरि महाशय (विष्णुचित्त) अपनेमें पाण्डित्यका सर्वथा अभाव जानकर राजसभामें जाना नहीं चाहते भगवान्को अपनी अयोग्यताकी बात निवेदन की। परन्तु वटपत्रशायी भगवान् ने कहा —‘तुम इस बात की कोई चिन्ता न करो। तुम उस राजसभामें जाओ और अवश्य जाओ। बाकी रही पाण्डित्यकी बात , सो मैं उसे सँभाल लूँगा। ’
विष्णुचित्त भगवान्की आज्ञा टाल न सके। वे

राजसभाको चल पड़े।

विष्णुचित्तका सम्मानके साथ सभामंडपमें आगमन और उनके उपदेश
विष्णुचित्त जब मदुरा पहुँचे तो इनकी बड़ी आवभगत हुई। राजा और मन्त्री दोनों सभाभवनके द्वारसे अभिवादनकर बड़े सम्मानके साथ उनको सभामंडप में ले गए। वहाँ की पण्डित-मण्डलीमें विष्णुचित्त नक्षत्रोंमें चन्द्रमाकी तरह सुशोभित हुए। शास्त्रज्ञानसे अनभिज्ञ एक अवैदान्तिक मालाकारका ऐसा सम्मान देखकर उपस्थित पण्डित-मण्डलीको बड़ी ईर्ष्या हुई। किन्तु विष्णुचित्तके मुखसे शास्त्रोंके अतीव निगूढ़ उपदेशोंको सुनकर सारी सभा विस्मित रह गयी। राजा और श्रोतृमण्डलीके साथ अभिमानी पण्डित-मण्डली भी उनकी अपूर्व भक्तिके उपदेशोंको सुनकर कृतार्थ हो गयी। सभी लोग विष्णुचित्तकी भूरि-भूरि प्रसंशा करने लगे। ऐसा क्यों न हो, स्वयं भगवान् ही जिसके सहायक हों, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं।

उपाधि लाभ
विष्णुचित्तके उपदेशोंसे राजा बड़े प्रभावित हुए। विष्णुचित्तको विविध अलंकारोंसे सजाए हुए हाथी पर बैठाकर खूब धूम-धामके साथ एक जुलूस निकाला गया। फिर राजाने उनको ‘ब्राह्मण-पुङ्गव’ या ‘भट्टपिराण’ की उपाधिसे विभूषित किया। विष्णुचित्तने जनसाधारणको अपने साथ ‘तिरुप्यलाण्डू’ नामक स्तव पाठ करनेके लिए कहा। आनन्दसे विभोर होकर सब लोग उनके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान् का स्तव करने लगे। उनके मिले हुए स्वरसे दिशाएँ गूँज उठीं, वहाँकी भूमि पवित्र हो गयी और सभी लोग कृतार्थ हो गये। ब्राह्मण-मण्डली तथा

अन्य सभी लोग विष्णुचित्तकी सर्वज्ञता तथा वेद रहस्यज्ञताका उल्लेखकर मुक्त कंठसे प्रसंशा करने लगे।

विष्णुचित्त द्वारा भगवानको समस्त राजद्रव्यका समर्पण
राजाने विष्णुचित्तको उपहारमें बहुतसा सोना तथा अन्यान्य बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट कीं। विष्णुचित्त राजासे विदा लेकर विल्लीपुत्तूर लौट आए और राजा द्वारा प्राप्त समस्त द्रव्योंको वटपत्रशायी भगवान् के सामने रखकर उनको समर्पण कर दिये। वे स्वयं पहले की तरह माला-सेवाके द्वाराही अपनी जीविका निर्वाह करने लगे। लौकिक गौरव और पार्थिव अहंकार उन्हें कभी भी स्पर्श न कर सके।

सिद्धसेवा और उनके रचित ग्रन्थ उन्होंने अपनेको कृष्णके चरणोंमें समर्पित कर दिया। कृष्ण-प्रेममें मत्त होकर उन्हें अब संसारकी सुध- न रही। वे अपने सिद्धस्वरूपमें भगवान्के साथ अप्राकृत सम्बन्ध प्राप्तकर रात-दिन कृष्णसेवानन्दमें अपना दिन बिताने लगे। गोदादेवीसे सम्बधित इनके जीवन-चरित्रकी जानकारीके लिये ‘गोदादेवी’ नामक लेख पढ़ना चाहिये। इनके जीवनमें— कृष्णलीलामें गोपसखाके रूपमें प्रवेश किये हुए पुरुषोंके जैसे, कई भाव दिखलायी पड़े थे। उन्होंने तमिल भाषामें ‘तिरुमड़ि’ नामक एक काव्यग्रन्थकी रचना की है, जिसमें कृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सरस और मधुर वर्णन किया गया है।